योग प्रसंग पर उपलब्धित आलोक

योग व्याख्या - श्रीश्रीमाँ सर्वाणी

(१)

''कुलकुंडलिनी जागृत होने से जागृत कुंडलिनी द्वारा ग्रंथिभेद करना पड़ता है। इस ग्रंथिभेद के न होने से षट्चक्रों के प्रथम चक्र मूलाधार में प्रविष्ट नहीं किया जा सकता। कमल में प्रविष्ट होकर इस कमल में जो बिन्दु रहता है वह विराट् के ध्यान के फलस्वरूप ऊर्द्धगति प्राप्त करता है।'' – सोहं सिद्धबाबा की यह उक्ति हैं (साधुदर्शन व सत्प्रसंग १म भाग, डः गोपीनाथ कविराज लिखित)

–योग साधन रहस्य के अंतर्गत उपरोक्त सोहंसिद्ध बाबा का यह कथन ध्रुव सत्य हैं। कुलकुंडलिनी शक्ति जड़ वायवीय आकार में मूलाधार चक्र के निम्नभाग में त्रिकोणाकार योनिमंडल के केन्द्रस्थल पर स्वयंभूलिंगरूपी शिव बिन्दु को सार्द्ध त्रिवलयाकार रूप से वेष्टित करते हुए सर्वजीव देह मध्य ही अवस्थान करती हैं। यह सृष्टितत्त्व जीवात्मा के आधार में घटस्थ होने का एक शाश्वत सर्वव्यापी नियम की अभिव्यक्ति विशेष है। जितनेक्षण कुलकुंडलिनी शक्ति मूलाधार चक्र के निम्नभाग में योनिमंडल पर अवस्थान करती हैं उतनेक्षण जीवों की पशुवत् चेतना ही सत्ता में जागृत रहती है; इस अवस्था में जीवसत्ता मध्य विवेकज बोधज्ञान का उदय नहीं हो पाता। सद्गुरुगण शक्तिपात कर्म की सहायता से जब ब्राह्मीदीक्षा प्रदान करते हैं तब इस शक्तिपात के फलस्वरूप नीचे योनिमंडल स्थित कुलकुंडलिनी-शक्ति जागृत होकर मूलाधारचक्र के चतुर्वर्ग क्षेत्रमंडल मध्य योनिमंडल सह संयुक्त अवस्था प्राप्त करती है, जिसके फलस्वरूप कुलकुंडलिनी मूलाधार चक्र के चेतना के बोध के साथ युक्तावस्थालाभ करने में सक्षम हो जाती है।

ब्रह्मविद्यारूपी क्रिया-साधन के सहायता से योनिमंडल एवं मूलाधार चक्र की ग्रंथि शिथिल होकर एक समय सरलगति लाभ कर मूलाधार चक्र चेतना के बोध के सहित युक्त अवस्थालाभ करती है। ब्रह्मविद्यारूपी क्रिया साधन की सहायता से योनिमंडल व मूलाधार चक्र मध्य जब वे स्थितिप्राप्त करते है तब ही मूलाधार ग्रंथि का भेदन होता है। इस अवस्था में अवस्थान करते-करते योगीसाधक का विवेक जागृत हो जाता है एवं मन में सदसद्-विचार बोध प्रबुद्ध होता है। इस कारण योगी के कर्म की गति ''सू'' के प्रति धावित होने लगती है। मूलाधार ग्रंथि भेदन हो जाने के पश्चात् ही मूलाधार चक्रस्थित मानव-चेतना की क्रमोन्नति की धारा में तब साधक के मनोबोध का प्रवाह प्रवाहित होने लगता है। मन-चेतना की प्रसारता हेतु ऊर्द्ध के प्रति बोध धावित होने लगता है एवं इसी कारण साधक

प्राण में सत्य-दर्शन के लिए जागृत हो उठता है एक अव्यक्त आकुलता बोध; इस आकुलता या व्याकुलता बोध को लेकर मन के प्रबल आत्मसंवेग से मूलाधार स्थित स्वयंभू बिन्दुरूपी ज्योतिर्मय शिव तब ऊर्द्ध की ओर सम्वर्द्धित होना आरम्भ करते हैं कुलकुंडलिनी शक्ति तेज को संग में लेकर, जो क्रमशः योगी को ऊर्द्ध चेतना की धारा में गतिप्राप्त कराती है एवं विराट् की ओर योगी की चेतना को तब ध्यान में आविष्ट करवाकर आकृष्ट कर लेती है। इस से योगी हृदय में क्रमशः सत्यस्वरूप का बोधोदय होने लगता है। यह बिन्दुरूपी शिव ही अन्त में ''लिंगज्योति'' रूप में विश्व का रूप धारणपूर्वक कूटस्थ के गगन-मंडल पर दर्शन में प्रकाशित होता है।

(२)

सोहंसिद्धबाबा की उक्ति – ''कैलास, विष्णुलोक प्रभृति जैसे देह में है वैसे ही विराट् रूप में देह के बाहर भी है। यह सब सत्य, एवं अनित्य है।''

–हाँ, कैलास, विष्णुलोक, शिवलोक, ब्रह्मा लोकादि इस ब्रह्मांड कटाह में काल के अधीनस्थ होकर हमसब के देहाभ्यंतरस्थ सहस्रार स्थित चक्र-मंडल के विशेष-विशेष केन्द्रों पर उद्भासित होते हुए अवस्थान करते हैं। यह कारण-जगत् के अन्तर्गत है। जो काल के अधीनस्थ है वह सृष्टि में अनित्य कहा जाता है, क्योंकि काल के मध्य ही सृष्टि-स्थिति-प्रलय संघटित होता है। कारण-जगत् में कारण-शरीर में महात्मागण सिद्धर्षिगण, देवगण ये सकल लोकादि में बाह्यतः दृश्यमान जगत् के उद्भासित स्तर पर लोक-लोकान्तर में निवास करते हैं। फिर देहाभ्यंतरस्थ सहस्रार चक्र के जिस-जिस केन्द्र में जिस-जिस लोक के चेतना का स्तर है, उस प्रत्येक लोक में गमन करना चाहने से पहले तपः-साधना द्वारा मस्तक के सहस्रार के समग्र केन्द्रों का ज्ञानलाभ (आयत्त) करना पड़ता है। वहाँ योगीगण के बोधपूर्ण चेतना का प्रसार होने पर ही तब उनसब लोकों में परवर्ती अवस्था में योगी-महात्मागण स्थिति प्राप्ति करने में सक्षम होते हैं; परन्तु ये समस्त लोकादि अनित्य होने पर भी पार्थिव स्थूल जगत् की तरह क्षणभंगुर नहीं है। यहाँ काल की गति नित्यकाल के साथ युक्त है एवं काल की गति काफी सम्वर्द्धित व मन्थर है।

(३)

''शिष्य जितना गुरु का चिन्तन करता है उतना ही वह उनके संचित या तपस्या का फल प्राप्त करता है।''

-सोहं सिद्धबाबा

– ''अहम् ब्रह्मास्मि'', यह शब्द चिन्तन् मनन् ध्यान करके योगीगण जिस प्रकार ब्रह्मस्वरूप को प्राप्त करते है ठीक उसी प्रकार विश्वास अवस्था में उपनीत होकर एक लक्ष्य पर ध्यान लगाकर गुरुरूप ब्रह्मचिन्तन मनन ध्यान करने से शिष्यगण योगयुक्त होकर गुरुस्वरूप की प्राप्ति कर लेते है। सद्गुरु को ज्योतिरूप में भगवान के प्रतिभू भाव में अपना विश्वास अन्तर में दृढ़ कर लगातार उनके ध्यान-चिन्तन-मनन करने से शिष्य भी निज सद्गुरु का स्वभाव प्राप्त कर लेता है। विशुद्ध ब्रह्मस्वभाव प्राप्ति को ही सद्गुरु का संचित तपोलब्ध फलप्राप्ति कहा जाता है। प्रकृतपक्ष में सद्गुरु अक्षय पद हैं। इसी लिए सद्गुरु का तपोलब्ध संचय कभी क्षय नहीं होता है। सद्गुरु अनन्त शक्तिदाता, अनन्त स्वभावयुक्त, अनन्त कृपाकारी करुणानिधान होता हैं। जीवरूपी शिष्य की क्या क्षमता है कि वह तपस्या करेगा? जीव तो मायाबद्ध माया का कीट स्वरूप है; निज को किस प्रकार अविद्या प्रकृति के बंधन से मुक्त किया जा सकता है यह वह नहीं जानता, उसका पथप्रदर्शक होता है शिवरूपी सद्गुरु। सद्गुरु अपने निर्मल चैतन्य-ज्योति के आलोक से शिष्य के अन्तर क्रमान्वय में उद्भासित करते हुए, साधन-समर की सहायता से, शिष्य को युद्ध में विजय प्राप्त करवाकर आत्मज्ञान, प्रातिभज्ञान और विवेकज्ञान प्रदान करता है। शिष्य आत्मकर्म करता है गुरुवक्त्रगम्य योगकौशल साधन से सद्गुरु के ही निर्देशित पन्था में। प्रत्येक शिष्य को गुरुवाक्य पर अटल विश्वास एवं साधना के प्रति एकनिष्ठता होनी चाहिए। गुरु के आदेश पालन को ही प्रकृत साधना कहा जाता है, जिस साधना के फल से एकदिन गुरुशिष्य का हृदय-बोध स्वभाव सर्वव्यापीत्व में अभेद हो जाता है।